OPEN ACCESS JOURNALS
Indiana Journal of Multidisciplinary Research
Abbriviate Tittle- Ind J Multi Res
ISSN *(Online)*- 2583-3820
Journal Homepage Link- https://indianapublications.com/Journals/IJMR
DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.13348110

INDIANA PUBLICATIONS
PRODUCTIVE AND QUALITY RESEARCH

Research Article

Volume-04|Issue-04|2024

शैवदर्शन भारतीय मेधा की चरमाभिव्यक्ति

डॉ. राकेश सोनी

दर्शनशास्त्र विभाग: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक (म. प्र.)

Article History
Received: 11.07.2024
Accepted: 19.08.2024
Published: 20.08.2024

Citation
सोनी, आर. (2024). शैवदर्शन भारतीय मेधा की चरमाभिव्यक्ति. *Indiana Journal of Multidisciplinary Research*, *4*(4), 4-14.

Abstract: यदि विश्व में किसी ऐसे एक दर्शनशास्त्र की खोज की जाये जिसके आधार पर न केवल भारत के अपितु विश्व के समस्त दर्शनों की या तो तार्किक व्याख्या की जा सके या उन सभी दर्शनों का अपने भीतर अंतर्भाव कर सके। इतना ही नहीं उस दर्शन में ऐसी क्षमता हो की उसको आधार बनाकर भविष्य के नये दर्शनों को विकसित किए जाने की भरपूर संभावना हो तो निश्चित रूप से वह दर्शन शैवदर्शन ही हो सकता है। शैव दर्शन कई नामों से भी जाना जाता है जैसे - त्रिकदर्शन, कश्मीर शैवदर्शन, शैवाद्वैत दर्शन, प्रतिभिज्ञा दर्शन, आगम दर्शन, स्पंदन दर्शन, कुल दर्शन, क्रम दर्शन, त्रिपुर दर्शन, शाक्त दर्शन आदि। वस्तुत: ये सभी नाम शैव दर्शन के ही विविध विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। शैव दर्शन में भी अभेद, भेदाभेद और भेद या द्वैत दर्शन के रूप में भी जाना जाता है। किंतु, अभेद या अद्वैत दर्शन के रूप में शेष दो भेदों को भी समाहित कर लिया जाता है। तत्व मीमांसा की दृष्टि से इस दर्शन में अद्वैत, द्वैत और बहुतत्ववाद का सुंदर समन्वय है। स्वरूप की दृष्टि से विशुद्ध भौतिकवाद, जीववाद और चेतनावाद या आध्यात्मिकता के बीच संतुलन है। इसमें तत्वों के विकासवाद या परिवर्तन के साथ साथ स्थिरता या शास्वतवाद के साथ सामंजस्य है। ज्ञान मीमांसा की दृष्टि से सभी प्रकार के ज्ञान को मान्यता दी गई है। अज्ञान का अर्थ यहाँ अल्प ज्ञान से लिया गया है न की पूर्ण अज्ञान से। अल्प ज्ञान से लेकर पूर्ण शिवत्व ज्ञान और स्वातंत्र चेतना से सृजनात्मक चेतना के हर रूप की मान्यता दी गई है। प्रकाश और विमर्श की युति से विश्व चेतना और व्यष्टि चेतना के बीच भी सुंदर सामंजस्य है। नैतिकता की दृष्ट से विशुद्ध भौतिक मूल्यों से लेकर श्रेष्ठ आध्यात्मिक मूल्यों के लिए पूरा स्थान है। सामाजिक दृष्टि से सभी प्रकार के भेद भाव से रहित लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए स्थान है। इतना ही नहीं विज्ञान, कला, दर्शन, साहित्य, भाषा, धर्म, अर्थ और राजनीतिक व्यवस्था के लिए सब कुछ है।

प्रस्तुत शोध पत्र में तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा और मूल्य मीमांसा के आधार पर शैव दर्शन को अन्य दर्शनों से तुलना करते हुए इसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना है।

Keywords: शैवदर्शन, भारतीय मेधा, चरमाभिव्यक्ति, दर्शन, त्रिकदर्शन, कश्मीर शैवदर्शन, शैवाद्वैत दर्शन, प्रतिभिज्ञा दर्शन, आगम दर्शन, स्पंदन दर्शन, कुल दर्शन, क्रम दर्शन, त्रिपुर दर्शन, शाक्त दर्शन.

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (**CC BY-NC 4.0**).

परिचय

शैव दर्शन अपने प्रारंभिक रूप में आगम शास्त्रों में पाया जाता है जिसके प्रथम प्रस्तोता आदि योगी **शिव** है जो पार्वती के साथ संवाद करते हुए प्रश्नोत्तर शैली में दर्शन के प्रत्येक तत्वों और अन्य अवधारणाओं की विस्तृत व्याख्या करते हुए जीवन और जगत के अनेक रहस्यों का उदघाटन करते है। परंपरा में आगम ग्रंथों की संख्या अनादि और अनंत मानी गई है किंतु, प्रामाणिक रूप से अद्वैत या अभेद परंपरा में इनकी संख्या **चौसठ** है जिसका मुख्यतः क्षेत्र **कश्मीर** है और इसे **भैरवागम** कहा जाता है। **भेदाभेद** परंपरा में आगमों की संख्या **अठारह** है। इसे **वीरशैव** भी कहा जाता है। इसका क्षेत्र **कर्नाटक** है। भेद प्रधान परंपरा में आगम ग्रंथ **दस** है। इस परंपरा को **शैव सिद्धयांत** कहा जाता है और क्षेत्र **तमिलनाडु** है। गुरु परंपरा की दृष्टि से इसका विकास आदि गुरु शिव से प्रारंभ होकर **श्री कंठ नाथ, दुर्वासा ऋषि, त्र्यंबक नाथ, आमर्दक नाथ, श्रीनाथ, त्र्यंबकादित्य, संगमादित्य, वर्षादित्य, अरुणादित्य, आनंद, सोमानंद, उत्पलदेव, लक्ष्मणगुप्त, अत्रिगुप्त, वराहगुप्त, नरसिम्हागुप्त, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, स्वामीराम, स्वामी महताबकक और स्वामी लक्ष्मणजू** जो बीसवीं सदी के है, तक परंपरा ज्ञात है इसके पश्चात की परंपरा अभी अज्ञात है। इस परंपरा में और भी ऋषि और विद्वान होंगे जिन्होंने इस परंपरा को बढ़ाने में अपना अप्रतिम योगदान दिये है।

दार्शनिक दृष्टि से इस दर्शन का प्रारंभ नवमी शती में उत्पन्न वासुदेव गुप्त की कृति **शिवसूत्र** से माना जा सकता है। इसके बाद **भट्ट कल्लट** द्वारा लिखित **स्पंदकारिका, सोमानंद** की **शिवदृष्टि, उत्पलदेव** की **ईश्वर प्रतिभिज्ञा** इसके पश्चात इस दर्शन का चरमोत्कर्ष दसवी सदी के अंतिम और ग्यारहवी सदी के प्रारंभ में उत्पन्न **अभिनव गुप्त** की कृतियों में होता है। **अभिनव गुप्त** ने शैव परंपरा के प्रत्येक रूप **स्पंदन, प्रतिभिज्ञा, क्रम और कुल** की परंपरा को एवं भेद, भेदाभेद तथा अभेद परंपरा को अपने भीतर समायोजित कर लिया। इस दर्शन को न केवल सैद्धांतिक स्तर पर अपितु साधना के स्तर पर **आनोपाय, शांभवोपाय, शाक्तोपय और आणोपाय** को भी समाहित कर लिया गया है। उनके द्वारा लिखित **तंत्रालोक** श्रेष्ठ शास्त्र का उदाहरण। लगभग चालिस ग्रंथों की उन्होंने रचना की है जो दार्शनिक और साहित्यिक दृष्टि से पठनीय है। इस परंपरा को उनके ही शिष्य **क्षेमराज** ने उत्कृष्ठता के साथ

आगे बढ़ाया । इनकी **प्रतिभिज्ञाहृदय, शिवसूत्रविमर्शनी, स्पन्द निर्णय** आदि कई श्रेष्ठ रचनाएँ है। **विज्ञान भैरव** भी इस परंपरा की श्रेष्ठ कृति है। आगे चलकर बीसवीं सदी में **प्रोफ़ेसर कांतिचंद्र पांडे** की **अभिनव गुप्त ए हिस्टारिकल ऐंड फ़िलासॉफ़िकल स्टडी** एवं **प्रोफ़ेसर कमलाकर मिश्रा** की **कश्मीर शैविज्म: सेंट्रल फ़िलासफ़ी ऑफ़ तंत्रिज्म** शैवदर्शन को समझने में मदद करती है।

दार्शनिक अवधारणायें

छत्तीस तत्व :

शैव दर्शन में छत्तीस तत्वों को स्वीकार किया गया है। इनमें से पच्चीस तत्त्व तो वही है जो सांख्य दर्शन ने माना है। **पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञान इंद्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष।** इसका अर्थ यह हुआ कि तात्त्विक दृष्टि से सांख्य दर्शन के पच्चीस तत्वों का अंतर्भाव स्वतः हो जाता है। लेकिन शैव दर्शन द्वैत से आगे बढ़कर अद्वैत की दिशा में आगे बढ़ते हुए इन तत्त्वों के साथ ग्यारह और तत्त्वों को स्वीकार करता है-**माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव।** माया तत्व की सृष्टि का मूल कारण परम शिव की स्वतंत्र ईच्छा है जो परमेश्वर के स्वरूप के ऊपर पर्दा डालकर उसे छिपा देता है।इस प्रकार अभेदस्वरूप शिव में भेद का स्फुरण हो जाता है। अर्थात् विश्व चेतना व्यष्टि चेतना के रूप में भाषित होने लगता है जो पाँच प्रकार के **कंचुक** रूप में प्रकट होता है- जो शिव अपने स्वरूप में अनंत कर्तव्यवाला है वही माया की वजह से सीमित क्रिया या कर्तव्य वाला हो जाता है, यही **कला** है। शिव जब माया कि वजह से सर्वज्ञान से वंचित हो कर अल्प ज्ञान में सीमित हो जाता है तो उसे **विद्या** कहा जाता है। जब शिव पूर्ण तृप्ति से संकुचित होकर जीव के रूप में भोगों में आसक्त होने लगता है तो उसे **राग** कहा जाता है। शिव शाश्वत रूप से संकुचित होकर काल के वर्तमान, भूत और भविष्य के काल खंड में फँसकर व्यवहार करने लगता है तो वह माया का **काल** कहा जाता है। जब माया की वजह से शिव तत्व स्वतंत्रता से संकुचित होकर **कार्यकारण की नियामिका** से निगमित होने लगे तो उसे **नियति** कहा जाता है। **शुद्ध विद्या** ही एक ऐसा तत्व है जिसमें **अहम** और **इदम** दोनों का परामर्श एक समान होता है। इस अवस्था में क्रियाशक्ति का प्राधान्य रहता है जिसके द्वारा ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव के स्वरूपों का संवेदन होता है। **ईश्वर** तत्व इदम अर्थात् परमेश्वर का बाह्य उन्मेष है तो **सदाशिव** अहम अर्थात् परमेश्वर का अंतर्निमेष है। शक्ति परमशिव का अहम विमर्श है जो स्पंदित होकर सृष्टि, स्थिति, संहार, आरोहण, अनुग्रह पाँच क्रिया करती है। **शिव** तत्व आनंद से युक्त ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होता है। समस्त विश्व का वह केंद्र बिंदु है। ध्यातव्य है कि शिव और शक्ति पृथक न होकर परस्पर अनुस्यूत है **प्रकाश और विमर्श** की युति है। इस प्रकार छत्तीस तत्व अखिल ब्रह्मांड का सार रूप है। जिसे जान लेने से मनुष्य सर्वज्ञानी हो जाता है।

षड़ाध्यव

आधव से आशय मार्ग से है। किंतु, यहाँ मार्ग विशिष्ट अर्थ लिए हुए है। साधारतः मार्ग वह है जिसमें चलकर कहीं पहुँचा जा सके लेकिन आधव के अनुसार इस मार्ग में चलकर कहीं नयी जगह पहुँचते नहीं बल्कि पुरानी जानी पहचानी जगह में ही पहुँचते है। इसके अतिरिक्त मार्ग पर चलकर क्रमशः मार्ग को छोड़ना भी पड़ता है। मार्ग की पुनरावृत्ति नहीं होती है। एक बार मार्ग पर चलकर सदा के लिए मार्ग को छोड़ दिया जाता है।आधव केवल मध्यम है। यह **वस्तुनिष्ठ** और **आत्मनिष्ठ** दृष्टि से दो प्रकार का है।वस्तुनिष्ठ से आधव तीन है-**भुवनाध्व, तत्वाध्व और कलाध्व** जो स्वरूप की दृष्टि से क्रमश: स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम् है। **भुवनाध्व** से आशय समस्त भौतिक विश्व ब्रह्मांड के मार्ग से है, जिनकी संख्या शैव दर्शन के अनुसार **एक सौ अठारह** है। **तत्वाध्व** जो की ब्रह्मांड से सूक्ष्म है। इनकी संख्या **छत्तीस** है, जिसका वर्णन पूर्व में दिया जा चुका है। **कलाध्व** इन सबसे सूक्ष्मतम् है जो तत्वों की सीमा को इंगित करती है। इनकी संख्या **पाँच** है। प्रथम, **निवृत्ति कला** जो पृथ्वी की सीमा को बताता है। दूसरा, **प्रतिष्ठा कला** जो जल तत्व से लेकर प्रकृति तक कुल तेईस तत्व की सीमा का बोध करता है। तीसरा, **विद्या कला** पुरुष से लेकर माया तत्व तक कुल सात तत्व को अपनी सीमा में रखता है। चौथा, **शांता कला** यह शुद्ध विद्या से लेकर शक्ति तत्व तक कुल चार तत्वों को अपने भीतर समाहित करता है। और अंत में पाँचवा, **शांतातीत्व** जो केवल शिव तत्व में पाया जाता है। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ विश्व एक प्रकार से वाच्याध्व है। जिसका आशय है जिसे निरीक्षित या अनुभव किया जा सके।

विश्व को अनुभव करने वाला आत्मनिष्ठ द्रष्टा को भाषायी दृष्टि से **वाचक** कहा जाता है। अतएव, भाषा की दृष्टि से विश्व को प्रतिबिंबित करने वाला आधव तीन है-**पदाध्व, मंत्राध्व और वर्णाध्व** जो स्वरूप की दृष्टि से क्रमशः **स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम्** है। पदाध्व वाक्य, मंत्राध्व शब्द और वर्णाध्व को अक्षर कहा जाता है। इस प्रकार वाच्य और वाचक अर्थात् भाषा और वस्तुजगत के संयोजन से छ प्रकार के आधव का अस्तित्व हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है।

मात्रिकाचक्र

मात्रिकाचक्र सिद्धांत वर्ण सिद्धांत है जो परम शिव के द्वारा अपनी पाँच शक्ति- **चित, आनंद, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्ति** द्वारा भाषा एवं सृष्टि की रचना करता है। चूँकि, भाषा सृष्टि का प्रतिबिंब है इसलिए भाषा की रचना ही सृष्टि की रचना है। भाषा और सृष्टि शिव से पृथक नहीं बल्कि उन्हीं का प्रतिबिंब होता है।**मात्रिकाचक्र** सिद्धांत यह बताता है कि किस प्रकार शिव अपनी उक्त शक्तियों का स्वतंत्रता के साथ उपयोग करके भाषायी विश्व की रचना करता है। उक्त पाँच शक्तियाँ संस्कृत भाषा के सोलह स्वरों का प्रतिनिधित्व करती है। **अ** शिव की चित शक्ति का, **आ** आनंद शक्ति का, यहाँ पर चित और आनंद शक्ति पूरी तरह से परस्पर अपृथक है। जहां चित शक्ति है वहाँ आनंद है और जहां आनंद है वहाँ चित शक्ति है। चित और आनंद शक्ति के बाद इच्छा शक्ति आती है जो **इ** और **ई** का प्रतिनिधित्व करती है।**उ** एवं **ऊ** शिव के ज्ञान शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे उन्मेष और उनाता भी कहा जाता है। यहाँ पर शिव स्वयं को विश्व से पृथक कर अपने स्वरूप में स्थित होकर ऋ, बड़ी ऋ, लृ एवं बड़ी लृ के रूप में स्थित हो जाता है और सृष्टि रचना की प्रक्रिया रुक जाती है। इस स्थिति

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

को अनासृत शिव कहा जाता है। चित और आनंद शक्ति इच्छा शक्ति से मिलकर क्रमशः **ए** और **ऐ** का सृजन करती है। जब चित और आनंद शक्ति ज्ञान अर्थात् उ एवं ऊ से संपर्क करती है तब **ओ** और **औ** का सृजन करती है ।ए ,ऐ, ओ और औ ये चार वर्ण चित और आनंद शक्ति इच्छा एवं ज्ञान शक्ति से मिलकर बनाते है इसलिए ये क्रिया शक्ति है। जब विश्व अपने ही स्वरूप में स्थित हो जाती है। पूरी चेतना और आनंद के साथ होती है तब वह **अनुस्वार** बिंदु का प्रतिनिधित्व करती है। और जब पूर्ण विश्राम की स्थिति होती है तब ऊर्जा **विसर्ग :** का प्रतिनिधित्व करती है। जिसे शिव बिंदु और शक्ति बिंदु कहा जाता है। स्वर **अ** से लेकर विसर्ग **ह** तक को शिव तत्व का प्रतिनिधित्व है। शेष वर्ण शक्ति तत्व का प्रतिनिधित्व करते है जो पैंतीस तत्व को प्रकट करते है।

उक्त पाँच शक्तिओं के संयोजन से व्यजनों की रचना होती है। इनमें से पाँच महाभूत **क** वर्ग का, पाँच तन्मात्रा **च** वर्ग का, **ट** वर्ग पाँच कर्मेन्द्रियों का **त** वर्ग पाँच ज्ञानेन्द्रियों का, **प** वर्ग **मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष** तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। शेष छ आंतरिक तत्व **माया, कला, विद्या, राग काल और नियति** को चार तत्वों **नियति, राग, काल और कला** के भीतर समाहित कर लिया जाता है।काल और कला तत्व को अर्ध स्वर **य वर्ण** प्रतिनिधित्व देता है। विद्या को **र**, राग और नियति को **ल** तथा माया को **व** वर्ण व्यक्त करता है। शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव और शक्ति को उत्पन्न नहीं किया जाता बल्कि शिव के स्वरूप की गर्मी से उपजती है। इसीलिए इन चार वर्णों को ऊष्म वर्ण कहा जाता है। **श** शुद्ध विद्या का, **ष** ईश्वर का, **स** सदाशिव का, **ह** शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

इस प्रकार सोलह स्वर शिव और पैतीस व्यंजन शक्ति मिलकर संपूर्ण मात्रिकाचक्र का निर्माण होता है।

प्रतिबिंबवाद

शैवदर्शन में **प्रतिबिंबवाद** एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार यह विश्व शिव या परम चेतना का प्रतिबिंब है।रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये पाँच गुण आंतरिक और आग, जल, पृथिवी, वायु और आकाश बाह्य प्रतिबिंब है। इन प्रतिबिंबों का ज्ञान चेतना में होती है न कि संबंधित अंगों में यदि चेतना न हो तो मृत व्यक्ति में भी इनका बोध होता, किंतु ऐसा होता नहीं है। हाँ, अंग माध्यम है, निमित्त है। इस प्रकार चेतना के दर्पण में विश्व प्रतिबिंबित होता है। हम केवल चेतना में प्रतिबिंबित वस्तुओं को ही देख सकते है न कि बाह्य वस्तुओं को। यहाँ पर बिंब क्या है? बिंब है चेतना कि स्वतंत्रता। स्वातंत्र ही वह बिंब है जो वस्तु जगत के रूप में चेतना रूपी दर्पण में प्रतिबिंबित होती है।अतएव वस्तुजगत परम चेतना की स्वतंत्रता का परिणाम है। शिव की स्वतंत्रता किसी पर निर्भर नहीं बल्कि आत्मस्थित है। उसकी स्वेच्छा का परिणाम है। यहाँ इच्छा से आशय **स्वतंत्र संकल्प** से है, सांसारिक इच्छा से नहीं। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोहरण और अनुग्रह ये पाँच शिव के स्वातंत्र कार्य है। इसलिए यह जगत भ्रम नहीं बल्कि वास्तविकता है। शिव का प्रतिबिंब है।

वाक् सिद्धांत

शैव दर्शन में वाक् सिद्धांत को **शक्ति सिद्धांत** के नाम से भी जाना जाता है।चार प्रकार के वाक् है- **परा, पश्चयंति, मध्यमा और बैखरी।** जब साधक शांभव स्थित में होता है अर्थात् पूर्ण अहं की स्थिति में तब वह वाक् की दुनियाँ में विचरण करता है। **परा** का अर्थ है सर्वोच्च वाक् अर्थात् ध्वनि रहित ध्वनि जो अपने ही वैश्विक चेतना में स्थित होता है। यह विशुद्ध चेतना की स्थिति है। परा अपने भीतर पश्चयंति, मध्यमा और बैखरी वाक् को समाहित किए रहती है।इस अवस्था में चेतना मुक्त रूप से **परा से बैखरी और बैखरी से परा** तक विचरण कर सकती है।**पश्चयंति** का अर्थ निर्विकल्प रूप से देखना, बिना किसी भेद भाव के। विश्व को बिना किसी विकल्प के समान भाव से देखना। इस स्थिति में साधक उच्च अवस्था में होता है जैसे किसी पर्वत के शिखर में रहकर नीचे सभी वस्तुओं को समान रूप से देखना जैसे कि यह श्रीनगर है। किंतु, वस्तुओं को अलग अलग दृष्टि से नहीं देखती। **मध्यमा वाक्** बैखरी और पश्चयंति के बीच में है इसलिए इसे मध्यमा कहा जाता है।इस अवस्था में साधक केवल विचार में रहता है। किसी क्रिया में नहीं। इसे एक प्रकार से मानसिक अवस्था भी कहा जा सकता है। **बैखरी** से आशय स्थूल से है जहां भाषा के सभी प्रकार के वाक्यों का पूरा उपयोग किया जाता है। व्यावहारिक जगत में आने वाले सभी प्रकार के वाक्यों का यहाँ उपयोग होता है। इस प्रकार बैखरी स्थूल, मध्यमा सूक्ष्म, पश्चयंति सूक्ष्मतम् और परा सर्वोच्च चेतना की भाषा का प्रतीक है।

शैव दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है इसमें **शक्ति** को शिव के साथ अपृथक रूप से स्वरूप के रूप में स्वीकार करना। यहाँ शिव ब्रह्म की तरह निष्क्रिय नहीं बल्कि वह सक्रिय और चेतन्य है। शक्ति के लिये कई नामों का प्रयोग किया गया है जैसे- **विमर्श, स्पंद, क्रिया, स्वातंत्र**। ये सभी नाम शक्ति की विशेषताओं को इंगित करती है। जब शक्ति पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है तब यह दर्शन **श्री विद्या या त्रिपुर सुंदरी** की परंपरा को मानती है और जब शिव तत्व पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है तब यह शैव परंपरा को मानने लगती है। वस्तुतः दोनों ही परंपरा **शिव-शक्ति** की परंपरा के रूप में समान रूप से मान्य है।

प्रतिभिज्ञा

शैव दर्शन की मुख्य पहचान ही **प्रतिभिज्ञा** के नाम से है। सोमानंद की पुस्तक **शिवदृष्टि** इस सिद्धांत को मुख्य रूप से प्रतिपादित करती है। इसके बाद उत्पलदेव की **ईश्वरप्रतिभिज्ञा** और क्षेमराज की **प्रतिभिज्ञाहृदयम** ने इस अवधारणा को और अधिक विकसित किये। **प्रतिभिज्ञा** का अर्थ होता है **'स्वयं को पुनः पहचानना'।** किसी को हम तभी पहचान सकते है जब उसे पहले भी कभी देखा हो। यह सिद्धांत यह बताता है कि हम वस्तुतः शिव है किंतु, अज्ञानता की वजह से हम स्वयं को जीव समझ बैठे है। अतः हमारा अब कर्तव्य है की अपने अज्ञान के पर्दे को हटाकर फिर स्वयं को पहचान ले। इसके लिए हमे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जागरूक होकर **अज्ञानता रूपी मल** को हटाकर अपने स्वरूप की पहचान करना है। हम अपने स्वरूप को क्यों भूल बैठे? परम शिव की **स्वतंत्र शक्ति** की वजह से। वह असीम से

ससीम हो गया तिरोधान के कार्य से, अब उसी के अनुग्रह के कार्य से पुनः अपने स्वरूप को पहचानना है। **प्रतिभिज्ञा** एक प्रकार का **अंत:प्रज्ञात्मक ज्ञान** है जो बिना किसी माध्यम के सीधे प्रत्यक्ष होता है। यह कोई बौद्धिक ज्ञान नहीं अपितु अस्तित्वपरक ज्ञान है। इस ज्ञान में **ज्ञाता और ज्ञेय** दोनों एक समान हो जाते है। **दूसरी बात,** एक अर्थ में यह कोई नया ज्ञान नहीं है क्योंकि हम वही जानते है जो पहले से ही जाना जा चुका है। किंतु, एक अन्य अर्थ में विशेष रूप से **जीव के संदर्भ** में यह नया ज्ञान भी है, क्योंकि वह पहली बार अपने **स्वरूप को जाना है**। इस प्रकार दोनों ही **अंतर्विरोधी ज्ञान** इसकी विशेषता है।

स्पंदन

शैव दार्शनिक परंपरा में स्पंदन सिद्धांत की परंपरा अनिवार्य रूप से जुड़ी है। वासुदेव की शिवसूत्र की व्याख्या के क्रम में भट्ट कल्लट् की **स्पंदकारिका** एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। इस सिद्धांत के अनुसार परम् तत्व स्थिर और निष्क्रिय न होकर गतिशील है, क्रियाशील है। स्पंदन का अर्थ ही है **किंचित् चलन** अर्थात् शिव तत्व शक्ति के रूप में सक्रिय रहता है। उसकी यह गतिशीलता उसका स्वभाव है न कि गुण। इसका यह स्वभाव उसकी स्वतंत्रता का परिणाम है। परम तत्त्व प्रत्येक क्षण गतिशील है, जिससे विश्व का सृजन, स्थिरता और प्रलय के साथ तिरोधान एवं अनुग्रह होता रहता है। स्पंदन को ही **विमर्श, क्रिया, शक्ति, स्वातंत्र** आदि नामों से अभिहित किया जाता है। शिव के साथ शक्ति का संयोजन स्पंदन सिद्धांत की ही वजह से देखने को मिलता है। यह परंपरा स्वतंत्र रूप से भी चलती है और **प्रतिभिज्ञा** के साथ संयुक्त होकर भी।

कुल परंपरा

कुल से आशय है सबका **योग या समष्टि** से। शैव दर्शन के अनुसार विश्व में ऐसा कोई पदार्थ या तत्व नहीं है जो जीवन के लिए उपयोगी ना हो। हर चीज वास्तविक, जीवन में उपयोगी और मुक्ति के लिये साधन बन जाने वाली है। भौतिक जगत से लेकर परम तत्व तक सब कुछ भोग्य और त्याज्य है। जीवन और जगत के प्रति इस समष्टि पूर्ण दृष्टिकोण को ही **कुल** कहा गया है। और इसे मानने वाले को **कौल** कहा जाता है।जो प्रायः कश्मीरी पंडित होते है। और इसे सर्वश्रेष्ठ तांत्रिक परंपरा कहा गया है। इस परंपरा को वाम मार्ग भी कहा जाता है। जिसमे मुक्ति हेतु पाँच **मकार-मांस, मछली, मदिरा, मैथुन और मुद्रा** को साधन के रूप में उपयोग में लिया जाता है। हलाकि, पाँच मकार की व्याख्या भी विशिष्ट और सामान्य दोनों अर्थों में लिया जाता रहा है। लेकिन दोनों ही अर्थों में इसे उदात्त भावना से ही गृहण किया जाता रहा है, न की संकुचित अर्थ में। इसमें पशु भाव से लेकर दिव्य भाव तक की भावना से पूजा और साधना **आत्म बोध** के लिया किया जाता है।

क्रम परंपरा

शैव परम्परा में चौथा **क्रम परंपरा** की भी एक महत्वपूर्ण धारा रही है। क्रम से आशय प्रक्रिया से है जो समय या **काल** से निगमित और नियंत्रित होता है।काल जीवन और जगत के प्रत्येक विचार, भावना और क्रिया को प्रभावित करती है यदि हम काल के इस प्रभाव को जीवन से निकाल दे या इस पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर ले तो हम अपनी सीमा को पार कर असीम सत्ता के साथ साक्षात्कार कर सकते है। विचार एक प्रक्रिया है जो ज्ञान के रूप में काल के क्रम में उद्घाटित होता है। इसीलिए काल की देवी के रूप में काली माँ को पूजित किया जाता है। काली को ज्ञान की देवी के रूप में तंत्र परंपरा में माना जाता रहा है।शैव दार्शनिक परंपरा में इसे भी एक धारा के रूप में मान्यता मिली हुई है।

ये चारों परंपरा एक दार्शनिक संप्रदाय के रूप में प्रचलित रही है। इन सबको एक दार्शनिक पटल में रखने का श्रेय अभिनव गुप्त को जाता है। उन्होंने इन सभी परंपराओं को **तंत्रालोक** में शैव दर्शन के भीतर समाहित करके ऐतिहासिक रूप से बहुत बड़ा दार्शनिक अवदान दिया है।

प्रमाता

प्रमाता अर्थात् प्रमा या ज्ञान को जानने वाला, प्रमाता है। शैव दर्शन में सात प्रकार के प्रमाता को माना गया है जो छत्तीस तत्त्वों को क्रमश: जानता है। सर्वप्रथम **सकल** प्रमाता है। पृथ्वी तत्व से लेकर पुरुष तत्त्व को जानने वाला **सकल** कहा जाता है। माया तत्व को जानने वाला **प्रलयाकल** कहलाता है जिसके अंतर्गत आणव मल और मायाई मल तो सक्रिय रहता है किंतु कार्म मल निष्क्रिय रहता है। माया से शुद्ध विद्या तक के बीच कोई भी तत्त्व नहीं रहता है। इसीलिए इसे महामाया कहा जाता है और इसे ही **विज्ञानाकल** कहा जाता है। चौथा, शुद्ध विद्या तत्व को जानने वाला **मंत्र** प्रमाता है। पाँचवा, ईश्वर को **मंत्रेश्वर**, छठवाँ, सदाशिव को **मंत्रमहेश्वर** और सातवां, शिव को **शिव प्रमाता** कहा जाता है। इस प्रकार छत्तीस तत्वों को सात प्रमाता जानते है।

मल और बंधन

शैव दर्शन में तीन मल या बंधन माना गया है जो की **माया शक्ति** में रहते है न की स्वतंत्र शक्ति में। यहाँ तक कि स्वतंत्र शक्ति और माया शक्ति एक ही है फिर भी इनमें अंतर है। स्वतंत्र शक्ति शक्ति एक प्रकार की ऊर्जा है जो सदैव ऊपर की और प्रवाहित होती है और माया शक्ति वैश्विक शक्ति होते हुए भी सदैव नीचे की और प्रवाहित होती है। माया एक प्रकार का बंधन है। जब वैश्विक ऊर्जा व्यक्तिगत जीव के अधीन होती है, तब वह माया होती है और जब वही ऊर्जा विश्व सत्ता के अधीन होती है तब वह **स्वातंत्र शक्ति** कहलाती है।शुद्ध शक्ति स्वतंत्र शक्ति है और अशुद्ध शक्ति माया है। **स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम्** दृष्टि तीन प्रकार के मल होते है। **कार्म मल** को स्थूल मल कहा जाता है। इसका संबंध कर्म से है। इसी कर्म के संस्कार से हमे सुख और दुख का बोध होता है। दूसरा, **मायायी मल** है जो सूक्ष्म है, इसमें हमारी स्वयं की एक चेतना भिन्न भिन्न रूपों में दिखायी देती है जैसे यह मेरा घर है, यह मेरा घर नहीं है, यह मेरी पत्नी है, यह कार मेरी नहीं है आदि। यह सभी प्रकार के द्वैत को जन्म देती है जिससे अनेक प्रकार के अपना अपना संसार दिखायी देने लगता है। तीसरा, **आणव मल** है जो सूक्ष्मतम् है। आणव मल विशेष रूप से व्यक्ति का आंतरिक मल है। आणव शिव तत्व के सर्वाधिक निकट होता है। इस मल के प्रभाव से ही व्यक्ति हमेशा ही स्वयं को अपूर्ण, छोटा, निर्बल, अज्ञानी मानता है, जबकि वह स्वयं शिवा है। इन कमियों की

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

वजह से स्वयं को संतुष्ट और पूर्ण करने के लिये उसके अंदर विभिन्न प्रकार की अभिलाषाएँ जन्म लेती है। **मायायी और आणव** मल कर्म में न होकर केवल अवधारणाओं में रहती है। जबकि **कार्म मल** सीधे कर्म से संबधित होती है।

शैव दर्शन में बंधन का अर्थ उक्त तीन मलों की वजह से अपने वास्तविक स्वरूप को ना जानकर स्वयं को शिव की जगह पशु रूप जीव समझना है। इसका कारण **अज्ञानता** है। यहाँ अज्ञानता का अर्थ ज्ञान के अभाव से नहीं बल्कि अपूर्ण या ग़लत ज्ञान से है।अज्ञानता दो प्रकार के है **बौद्ध और पौरुष। बौद्ध अज्ञानता** से आशय बौद्धिक या विचार की अज्ञानता और पौरुष अज्ञानता से आशय अस्तित्व की अज्ञानता से है। दोनों प्रकार की अज्ञानता परस्पर संबंधित है।

मोक्ष एवं मोक्षोपाय

शैवदर्शन में **मोक्ष या मुक्ति** से आशय जीव अपनी अज्ञानता और सीमा से मुक्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप **प्रकाश और विमर्श** दोनों की प्राप्ति से है। इसमें **सत्य, चित्, आनंद के साथ साथ स्वातंत्र क्रिया** के होने से है। वैश्विक अर्थ में मोक्ष कोई नयी घटना नहीं है **प्राप्त को ही प्राप्त** किया जाता है। किंतु, व्यक्तिगत स्तर पर यह नयी घटना है भी है क्योंकि पहली बार उसे **शिवत्व** का बोध हुआ है।दोनों ही अर्थ ग्रहण किए जाते है।

जहां तक मोक्षोपाय का प्रश्न है। प्रथम, शैव दर्शन के अनुसार मोक्ष किसी भी उपाय से संभव नहीं है। क्योंकि यदि यह किसी उपाय से संभव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उपाय ज़्यादा शक्तिशाली है उपेय से। दूसरा, उपाय शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी समस्या का समाधान है जबकि मोक्ष किसी समस्या का समाधान नहीं अपितु, वास्तविक स्वरूप है । अतः शिवसूत्र में इसे **आनोपाय** कहा गया है। किंतु, आनोपाय को भी **सहज योग या सहज समाधि** के अर्थ में लेकर परंपराओं को विकसित किया गया है। **भैरवतंत्र विज्ञान** में एक सौ बारह धारणाओं का अभ्यास इसी परंपरा का हिस्सा है। किंतु, आनोपाय का अधिकारी वही है जिसकी चेतना अत्यंत विकसित, सहज और विवेक जाग्रत हो। साधारण व्यक्ति के लिए नहीं है।

उपाय के रूप में तीन प्रकार के उपाय बताये गये है **शांभवोपाय, शाक्तोपय और आणोपाय** ।

शांभवोपाय सर्वोच्च उपाय है। इसे इच्छा उपाय भी कहा जाता है। इसमें विचार रहित होना पड़ता है। विचार रहित होकर केवल स्वयं के प्रति जागरूक होकर जीवन की एक एक गतिविधियों का केवल विचार रहित अवलोकन किया जाता है। यह गुरु के सहयोग से संभव होता है। वाक्य को शब्द में, शब्द को वर्ण में, वर्ण को ध्वनि में और ध्वनि को स्वयं में मैं के रूप निगमित मानकर अवलोकन किया जाता है। **शाक्तोपय** इसे ज्ञानोपाय भी कहा जाता है क्योंक इसमें उपाय के रूप में ज्ञान का उपयोग किया जाता है। इसमें मात्रिकाचक्र का अभ्यास किया जाता है। जिसमें भाषा और विश्व के संबंधों को तार्किकता के साथ जानकार जागरूकता के साथ स्वीकार करने का अभ्यास किया जाता है। **आणोपाय,** इसके तहत सभी प्रकार के यौगिक अभ्यास किए जाते है। इसमें द्वैत साधनों का उपयोग करते हुए द्वैत भाव से मुक्त पाने की क्रिया कि जाती है। इसमें व्यक्ति अर्थात् अणु पर केंद्रित किया जाता है। **श्वांस, करण अर्थात् सभी प्रकार की इंद्रियाँ, ध्यान और स्थान** साधनों का प्रयोग किया जाता है। श्वांस में श्वांस की गति पर नियंत्रण कर मन को नियंत्रित किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को उनके विषय के साथ सामंजस्य बिठाकर यथार्थ बोध को प्राप्त किया जाता है। शरीर के भीड़ और बाहर विषयों पर ध्यान का अभ्यास किया जाता है।

शिव के पाँच कृत्य

इस दर्शन में परम तत्व के पाँच कृत्य की बड़ी भूमिका है। शिव अपनी स्वातंत्र शक्ति का प्रयोग सृष्टि की **रचना, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह** के माध्यम से स्वेच्छा से कार्य करता रहता है। प्रथम तीन कार्य तो अन्य दर्शनों में भी दिखाया गया है। किंतु, अंतिम कार्य केवल शैव दर्शन में ही पाया जाता है। तिरोधान का अर्थ है शैव अपने ही स्वरूप को छिपाकर जीव के रूप में प्रकट होता है और फिर परम तत्त्व या गुरु के अनुग्रह से पुनः अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करता है। ऐसा क्यों होता है? इसका एक ही उत्तर है शिव की **लीला या खेल** है जो आनंद के साथ खेलता है। यही इसकी विशिष्टता है। इसीलिए संसार को यहाँ वास्तविक माना गया है। जीव के द्वारा किया कर्म बंधन पर आधारित होता है जबकि शिव के द्वारा किया यही कर्म क्रिया बनकर लीला करता है। शैव दर्शन में कर्म और क्रिया में अंतर बताया गया है। कर्म का संबंध जीव से है तो क्रिया का संबंध शिव या मुक्त जीवात्मा से है। गुरु के द्वारा अपने शिष्य पर किया जाने वाला अनुग्रह या शक्तिपात भी पाँच प्रकार के है-**तीव्रता-तीव्र, तीव्र-मध्यम, तीव्र -मंद, मध्य-तीव्र और मध्य-मध्य शक्तिपात।**

पाँच प्रकार के शरीर

शैव दर्शन में छत्तीस तत्वों की यात्रा में पाँच प्रकार के शरीर की अवधारणा पायी जाती है।इस यात्रा में सार्वभौम रूप से आत्मनिष्ठ शरीर की आवश्यकता होती है। सभी जीवों में एक ही आत्मनिष्ठ शरीर है ईश्वर का जो पृथिवी से शिव तत्त्व तक की यात्रा करता है। **जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त, तुरीय और तुरियातीत।**जब हमारी चेतना वस्तुजगत के प्रति पूरी तरह जागरूक रहती है, तो उसे **जाग्रत चेतना शरीर** कहते है। जब वस्तुजगत की चेतना वस्तुनिष्ठता को त्याग कर उसके केवल संस्कार के साथ गमन करती है तो वह **स्वप्न चेतना** होती है। जब चेतना वस्तुजगत की वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता दोनों को त्यागकर शून्यवत हो जाती है तब उसे **सुषुप्त चेतना** कहते है। जब गुरु की कृपा से आत्मनिष्ठ शरीर पूरी आत्मनिष्ठ चेतना की जागरूकता के साथ, बिना किसी रुकावट के स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित हो जाती है तब उसे **तुरीय चेतना** और जब यही चेतना स्थिर होकर अपने ही प्रकाश में दृढ़ हो जाती है तब वह **तुरियातीत चेतना** कही जाती है। इस अवस्था में चेतना **चेतन्य** बनकर प्रकाशित होती है।

उक्त सभी अवधारणायें, सिद्धांत एवं परंपराएँ शैव दर्शन को प्रकाशित करती हैं और इनके माध्यम से शैव दर्शन

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

को ठीक तरह से समझा जा सकता है। अब शैव दर्शन को **तत्त्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा, नीति मीमांसा और अन्य सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि** से भारत की अन्य दार्शनिक परम्पराओं एवं पश्चिमी दर्शन की परंपराओं यथा विश्लेषणवाद और फ़ेनोमेनोलॉज़ी से तुलना की जाये तो शैव दर्शन अन्य सभी दर्शनों में श्रेष्ठ और बौद्धिक रूप से मनुष्य को संतुष्ट करती है।

तत्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा

तत्व मीमांसा की दृष्टि से किसी भी दर्शनशास्त्र को **अद्वैत, द्वैत एवं बहुतत्ववाद या इन सब के संयोजन** के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। तत्व के स्वरूप की दृष्टि से **भौतिक, मानसिक-बौद्धिक एवं चेतना या इन सबका संयुक्त** रूप से हो सकता है। इस दृष्टि से शैव दर्शन अद्वैत, द्वैत एवं बहुतत्ववाद का संयुक्त रूप है। इसमें तत्व की तीनों दृष्टियों के बीच संतुलन बना हुआ है। परंपरा भी इसकी पुष्टि करती है। कश्मीर शैवदर्शन को अद्वैतवादी, तमिलनाडु के शैव सिद्धांत को द्वैतवादी तथा कर्नाटक के वीर शैव दर्शन को द्वैताद्ववैत एवं संख्या कि दृष्टि से बहुतत्व वादी है। इस दृष्टि से **सांख्य दर्शन का द्वैतवाद** स्वतः ही शैव दर्शन के अन्तर्गत अंतर्भूत हो जाता है। सांख्य का **पचीस तत्त्व शैव के छत्तीस तत्वों** में पाँच महाभूत से पुरुष तत्व तक समाविष्ट है। स्वरूप की दृष्टि से सांख्य के जड़ से लेकर आत्म चेतना तक मान्यता प्रदान की गई है। यद्यपि शैव इससे भी आगे की चेतना के सर्वोच्च स्तर परम शिव को मानता है।

योगदर्शन की तत्व मीमांसा वही है जो सांख्य दर्शन की है। योग साधना की दृष्टि से **अष्टांग योग, क्रिया योग और अभ्यास-वैराग्य को आणवोपाय, शाक्तोपाय और शांभवोपाय** के आंतर्गत समाहित हो जाता है। कुछ मौलिक संशोधन भी किए गए है किंतु, उनके स्वरूप में कोई अंतर नहीं पड़ता है। जैसे शैव दर्शन में **अष्टांगयोग** की जगह **षडांगयोग** को माना गया है। यम, नियम आसन को छोड़कर **प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, तर्क और समाधि** को माना गया है। इसमें तर्क को ध्यान के बाद जोढ़ कुल छः अंगों को स्वीकार किया गया है। वैसे भी शिव को आदि योगी माना गया है। योग के प्रत्येक रूपों के अधिष्ठाता शिव ही हैं।

न्याय दर्शन के अनुसार सोलह तत्वों को माना गया है-**प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान।** इन पदार्थों के ज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति मिलती है जिसके परिणाम में **दोष, प्रवृत्ति, जन्म, और दुःख** की से छुटकारा मिलकर अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती है। सारांश में प्रमाण और तर्क के साथ किया गया विचार या चिंतन हमें वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है और इस क्रम में उक्त सोलह पदार्थों का ज्ञान होना चाहिए। शैवदर्शन में भी अज्ञान की निवृत्ति के लिए **बौद्ध ज्ञान और पौरुष ज्ञान** की आवश्यकता होती है। बौद्ध ज्ञान से आशय बौद्धिक ज्ञान से है जिसकी प्राप्ति तार्किक चिंतन से ही संभव है। तर्कपूर्ण चिंतन की प्रणाली को न्याय के सोलह पदार्थ से कोई विरोध नहीं है। शैव दर्शन इसे स्वीकार करता है। किंतु, जहां एक ओर न्याय दर्शन यहीं तक सीमित है। शैव दर्शन के अनुसार बौद्धिक ज्ञान से हमे तत्व का केवल अवधारणात्मक ज्ञान की प्राप्ति होती है। अस्तित्वपरक ज्ञान की प्राप्ति के लिए तत्व का बोध होना आवश्यक है।इस की प्राप्ति के लिए **शास्त्र, गुरु और स्वयं के अनुभव** की आवश्यकता होती है। बोधात्मक ज्ञान को ही पौरुष ज्ञान कहा गया है। इस प्रकार तर्क पूर्ण तात्विक चिंतन शैवदर्शन का आधार है। अतः न्यायदर्शन शैव दर्शन का सहायक है।

वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन का ही सह दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार पदार्थों की संख्या छः है- द्र**व्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय**। बाद में **अभाव** नामक पदार्थ को सातवें पदार्थ के रूप में भी मान लिया गया है। सभी छः पदार्थ पृथ्वी आदि परम सूक्ष्म भूत तत्वों का नाम विशेष है। इसे मूल मानकर प्रवृत होने के कारण इस शास्त्र का नाम वैशेषिक है। संक्षेप में, सभी प्रकार के भूत तत्वों के अस्तित्व को माना गया है। जड़ जगत की सभी प्रकार की घटनाओं कि व्याख्या के लिए **परमाणुवाद और सत्कार्यवाद के आरंभवाद** को माना गया है। व्याख्या के लिए तथ्य के साथ साथ तर्क की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए न्याय दर्शन उपलब्ध है। अतः तथ्य के लिए न्याय दर्शन को वैशेषिक की ज़रूरत है और तर्क के लिए वैशेषिक को न्याय दर्शन की ज़रूरत है। इसीलिए दोनों ही एक दूसरे के लिए पूरक है। शैव दर्शन के **छत्तीस तत्वों में उक्त छः पदार्थों की व्याख्या** की जा सकती है। इसके अतिरिक्त **षड आध्व** के अंतर्गत एक **सौ बारह भुवन** अर्थात् भौतिक विश्वों की भी कल्पना की गई है, जिनका अस्तित्व इस जगत में है। इस तरह से व्यापक दृष्टि से देखे तो न्याय दर्शन के साथ-साथ वैशेषिक दर्शन के सभी पदार्थ एवं सिद्धांत शैव दर्शन में या तो देखा जा सकता है अथवा इसकी व्याख्या शैव दर्शन के अनुसार की जा सकती है। इससे दोनों ही दर्शनों किसी भी प्रकार की सिद्धांत हानि नहीं होगी।

मीमांसा दर्शन

यह दर्शन कर्म को प्रोत्साहित करता है। कर्म सदैव कार्यकारण के नियमानुसार घटित होता है। इसमें व्यक्ति कार्यकारण के नियमानुसार कार्य करने को बाध्य होता है, व्यक्ति की स्वतंत्रता इसमें बाधित होती है। शैवदर्शन में **कर्म** की जगह **क्रिया** शब्द का प्रयोग किया गया है। **क्रिया** शब्द व्यक्ति की स्वतंत्र शक्ति को प्रतिबिंबित करता है। यह कार्यकारण जैसे किसी नियम से संचालित नहीं होता है न ही यह कर्मफल की अपेक्षा रखता है। इसलिए शैव दर्शन का मत यहाँ पर मीमांसा से भिन्न है। इसके अतिरिक्त मीमांसा के अनुसार कर्म की निष्पत्ति के लिए वेद वाक्यों के अर्थ की सुनिश्चितता होना आवश्यक है। इसके लिए भाषा का विश्लेषण और उसमे निहितार्थ अर्थ को प्रकट किया जाता है। वेद भी ज्ञान का स्रोत है लेकिन उसका स्वरूप विश्व व्यवस्था और सामान्य ज्ञान से है। जबकि शैव दर्शन में ज्ञान का स्वरूप व्यक्तिगत बोधात्मक और विशिष्ट प्रकृति का होने से भाषा और विचार के विश्लेषण की प्रक्रिया से यहाँ भी गुजरना पड़ता है। **मातृका चक्र, पद, मंत्र एवं वर्ण** आदि का ज्ञान भाषा के विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजर कर अर्थ और विचार से मुक्त हुआ जाता है। इस दृष्टि से भाषा विश्लेषण का कार्य मीमांसा की ही भाँति शैव दर्शन में भी प्रस्तावित है, भले ही उसका उद्देश्य अलग हो।

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

अतएव मीमांसा दर्शन का अंतर्भाव शैव दर्शन में किया जा सकता है।

अद्वैत वेदान्त

शैवदर्शन की तुलना प्रायः अद्वैत वेदान्त के साथ समानता और असमानता के आधार पर सर्वाधिक होती है। पहली समानता यही है की अद्वैत वेदान्त की ही भाँति शैवदर्शन के अंतर्गत **कश्मीर शैवदर्शन** भी अद्वैतवादी है। जहां एक ओर अद्वैत वेदान्त **ब्रह्म** को मूल तत्त्व मानता है तो शैव दर्शन में मूल तत्त्व **शिव** है। यद्धपि शैवदर्शन के तहत अद्वैत वाद, द्वैतवाद और बहुतत्वाद एवं इनके संयोजन यथा द्वैताद्वैत या भेदाभेद रूप भी प्रचलित है, जिसकी वजह से इसे त्रिक दर्शन के नाम से भी अभिहित किया जाता है, तथापि, त्रिक की संरचना अद्वैतवाद के स्वरूप में ही अपनी तार्किक उपस्थिति देती है। अद्वैत वेदान्त के विकास के क्रम में भी **द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत और विशिष्टाद्वैत** के रूप में दार्शनिक दृष्टि सामने आये है। किंतु, इनका स्वरूप ज्ञान की जगह भक्ति और अद्वैतवाद की मायावाद की आलोचना पर आधारित है। जबकि शैवदर्शन में **त्रिकवाद** अपनी तार्किक अन्विति के साथ उपस्थित है। कश्मीर शैवदर्शन शैव दर्शन की चरम स्थिति है, जिसमें शैव दर्शन के सभी रूपों की उपस्थिति देखी जा सकती है, इस अर्थ में भी वह अद्वैतवादी है। इसीलिए कश्मीर शैवदर्शन और शैवदर्शन से मोटे रूप में एक ही अर्थ ध्वनित होता है।

अद्वैत वेदान्त की तुलना में शैवदर्शन की मुख्य विशेषता यह है की शिव तत्त्व के स्वरूप में प्रकाश के साथ विमर्श अर्थात् क्रिया शक्ति अपृथक रूप से विद्यमान है जबकि ब्रह्म के स्वरूप में क्रिया शक्ति नहीं होती है। ब्रह्म में सत, चित और आनंद तो है किंतु शक्ति न होने से वह निष्क्रिय है। सृष्टि सृजन में निष्क्रिय ब्रह्म माया से उपहित होने पर ही वह संगुण ब्रह्म बनकर सृजन का कार्य करता है। जबकि शिव तत्त्व में सृजन करना उसका स्वभाव है, कोई गुण नहीं। शिव के पाँच कार्य है जिसे वह निरंतर करता है-**सृष्टि, पालन, संहार, तिरोधान और अनुग्रह।** अद्वैत वेदान्त में सृष्टि रचना में माया की भूमिका प्रमुख होती है। जबकि शैवदर्शन में माया क्रिया शक्ति का परिणाम है, जो सृष्टि रचना प्रक्रिया का हिस्सा है। माया को लेकर अद्वैत वेदान्त सदैव ही असहज रहा है। मायावाद की आलोचना रामानुज और अरविंद जैसे कई दार्शनिकों ने की है। शैवदर्शन भी आलोचना करता है। तात्विक दृष्टि से क्रिया शक्ति को तत्व के स्वरूप में प्रकाश के साथ स्वीकार करके शैवदर्शन अद्वैत वेदान्त से एक कदम आगे हो जाता है।

दूसरी बात मुक्ति के स्वरूप को लेकर है। शैवदर्शन में मुक्ति के तहत जीव **ज्ञाता के साथ-साथ कर्ता** भी होता है। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति परम तत्व को जानता है तो इसका यह भी अर्थ है की वह जीवन और समाज में क्रिया भी करता है। **क्रिया ही ज्ञान है और ज्ञान ही क्रिया है।** जबकि अद्वैत वेदान्त में परम तत्व का ज्ञाता प्रकाश और आनंद से तो भरा होता है लेकिन वह निष्क्रिय रहता है। इसलिए उसके ज्ञान का व्यक्तिगत स्तर पर तो मूल्य है लेकिन समाज के स्तर पर उसका कोई मूल्य प्रतीत नहीं होता है। तीसरी बात, तत्वज्ञान के लिए अद्वैत वेदान्त में साधन के रूप में अपरोक्षानुभूति को माना गया है, जबकि शैवदर्शन में प्रतिभिज्ञा को। प्रतिभिज्ञा में केवल स्वयं के स्वरूप का पुनर्स्मरण करना है। यह कोई नई घटना नहीं है। जबकि अपरोक्षानुभूति में नये ज्ञान का दावा है। यद्यपि व्यापक अर्थ में तत्व बोध में प्राप्तस्य की ही प्राप्ति होती तथापि जीवन में पाली बार होने से ज्ञान में विलक्षता और नवीनता भी होती है। दोनों ही लक्षण है। शैव दर्शन में इसे केवल पुनर्स्मरण कहा है और वेदांत में इसे अपरोक्षानुभूति या नया नये ज्ञान पर ज़ोर है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त का शैव दर्शन में ही अंतर्भाव हो जाता है।

बौद्ध दर्शन

बुद्ध किसी तत्वमीमांसा को नहीं मानते थे और न ही इसकी स्थापना के लिए उन्होंने कोई प्रयास किया। वे प्रायः ऐसे सवालों का उत्तर मौन होकर देते थे। किंतु, बाद के बौद्ध दार्शनिकों को **तत्वमीमांसीय** प्रश्नों का सामना करते हुये ऐसे प्रश्नों के उत्तर दिये, और यह उत्तर बुद्ध के मौन के अर्थ एवं इसके तार्किक व्याख्या के प्रकटीकरण के रूप में लिया जाता है। उनके अनुसार सत् **क्षणभंगुर, अर्थक्रियाकारित्व और अनात्मवाद** है। इन तीनों विशेषताओं में मुख्य विशेषता सत् की क्षणभंगुरता है, शेष उनकी तार्किक निष्पत्ति है।**क्षणभंगुरता** से आशय सत् की परिवर्तनशीलता से है। परिवर्तनशीलता तभी होगी जब **गति होगी, स्पंदन होगा, क्रिया होगी, विमर्श होगा।** ये सभी लक्षण **शैवदर्शन** के परम शिव तत्व में पाया जाता है, प्रकाश के अतिरिक्त है। इसका यह अर्थ हुआ की बौद्ध दर्शन की तात्विक दृष्टि शैव दर्शन के साथ मेल खाती है। यद्यपि शैव दर्शन बौद्ध दर्शन की दृष्टि से भी आगे है और वह केवल गति या क्रिया को ही नहीं मानता बल्कि प्रकाश को भी मानता है। इस दृष्टि से शैव दर्शन बौद्ध अवधारणाओं को अपने भीतर समाहित करते हुए भी उससे भिन्न भी है।

इसके अतिरिक्त बौद्ध दर्शन में दुख की निवृत्ति या तृष्णा एवं अज्ञानता के बुझ जाने को ही **निर्वाण** कहा है। एक अर्थ में इसमें बोध या मुक्ति **नकारात्मक स्वरूप** की है। इसका कोई सकारात्मक पक्ष नहीं है, जबकि शैव दर्शन की मुक्ति में दुख एवं अज्ञानता की निवृत्ति के साथ-साथ **आनंद और क्रिया** भी है, जो ज़्यादा व्यापक और पूर्ण है।निर्वाण प्राप्ति के उपाय के रूप में चौथे आर्य सत्य एवं ध्यान के विविध रूपों **विपश्यना, झेन** आदि तकनीक को साधन के रूप में माना गया है, वही दूसरी और शैव दर्शन में भी **सम्यक् तर्क, एक सौ बारह धारणा, आनोपय और शांभोपाय** को भी माना गया है। विपश्यना ध्यान शैव परंपरा की साधना पद्धति का ही रूप है। बौद्ध और शैव की निकटता का आधार ही इनकी साधना पद्धति और और सत्य की समझ है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन को भी शैव दर्शन के आलोक में समझा जा सकता है। व्यवहार में भी इन दोनों में निकटता देखी गई है। **कश्मीर और कैलाश पर्वत** दोनों के लिए पवित्र स्थल है।

जैनदर्शन

जैनदर्शन की दृष्टि में सत् अनंत गुणों से युक्त स्वरूप वाला होने से दृष्टि विशेष में सभी गुण सत्य है। तत्व मीमांसीय दृष्टि से यह **अनेकांतवाद** और ज्ञान मीमांसीय दृष्टि से यह

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

स्यातवाद कहा जाता है। सभी सत्य और सभी सत्य के सभी गुण दृष्टि विशेष से सत्य ही होती है, ऐसा जैनदर्शन प्रतिपादित करती है। शैव दर्शन में भी छत्तीस तत्व मानने से बहुतत्ववादी होने के साथ ही प्रत्येक तत्व को सत्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त शैव दर्शन के अनुसार अज्ञानता की वजह से ही हम अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से वंचित हो जाते है। **अज्ञानता** का अर्थ शैव दर्शन में ज्ञान का अभाव नहीं बल्कि **अल्प ज्ञान या अपूर्ण ज्ञान** से है। अर्थात् ऐसा कोई भी जीव नहीं जिसके पास कोई न कोई ज्ञान न हो, यदि उसके पास कोई ज्ञान है तो वह संदर्भ विशेष में सत्य होगा ही। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक ज्ञान अंशतः या संदर्भ विशेष में सत्य है। पूर्ण सत्य ज्ञान के लिए उसे अपने स्वरूप अर्थात् ज्ञाता के स्वरूप को जान लेने से सार रूप में वह पूर्ण ज्ञाता हो जाता है। इस दृष्टि से जैन दर्शन और शैव दर्शन में समानता है। इसके अतिरिक्त, जैन परंपरा के चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम **तीर्थंकर आदिनाथ** है। ऐसा कहा जाता है, और कई जैन समुदाय मानते है की आदिनाथ कोई और नहीं बल्कि आदि योगी शिव ही है। मुक्ति या केवल्य के लिए जैन परम्परा में जो त**प, महाव्रत, अणुव्रत** आदि का पालन करते है वे सभी शैव परंपरा में आणोपाय के तहत भी मान्य है।

इस प्रकार **अनेकांतवाद एवं स्यातवाद** शैव दर्शन के **अज्ञानता के अल्प ज्ञान या अपूर्ण ज्ञान** एक ही अर्थ को प्रकट करते है। इसलिए जैनदर्शन को भी शैव दर्शन के आलोक में समझना चाहिये।

लोकायत दर्शन

इस दर्शन को **लोकदर्शन व चार्वाक दर्शन** के नाम से भी जाना जाता है। इस दर्शन के अनुसार केवल और केवल भौतिक तत्व अर्थात् **पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु का या इससे बने वस्तुओं** का ही अस्तित्व है, शेष किसी का नहीं। इनके अनुसार एक ही जीवन मिलता है इसलिए जी भरकर भौतिक वस्तुओं का उपभोग करते हुए सुखपूर्वक जीवन जीना चाहिए। न स्वर्ग है, न नर्क और न ही कोई बंधन, न कोई मुक्ति है, न कोई देवी, देवता। इस विचार को शैव दर्शन के छत्तीस तत्वों में से प्रथम पच्चीस तत्व विशुद्ध भौतिक, जैविक, मानसिक-बौद्धिक और चेतना के रूप में देखा जा सकता है। इसमें से प्रथम इक्कीस पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन तो विशुद्ध भौतिक स्वरूप के है। अतः तात्विक सृष्टि से लोकायत की मान्यता शैव दर्शन में समाहित है। शैव दर्शन लोकायत की ही भाँति संसार के वस्तुओं के उपभोग की बात करता है। कौल परंपरा में इसके पक्ष में अनेक तर्क दिये गये है। किंतु, लोकायत और शैव परंपरा के उपभोग में अंतर यह है की शैव परम्परा में उपभोग करने के पश्चात उपभोग की वस्तु को त्याग देने से है और फिर क्रम से आगे की वस्तुओं का उपभोग करते हुए अंत में शिव तत्व के साक्षात्कार तक की यात्रा करने से है। इस प्रक्रिया को **क्रमिक मुक्ति** कहा गया है। अर्थात् इसमें भोग से आशय **उदात्त भोग** से है। जबकि लोकायत में भोग सीमित अर्थ में है, जो जड़ता के साथ आत्मकेन्द्रित है। फिर भी लोकायत के दर्शन का समाहार शैव दर्शन में हो जाता है। इसे भी इसके आलोक में समझा जा सकता है।

पश्चिमी दार्शनिक परंपराओं को भी शैव दर्शन के आलोक में देखने पर ऐसा प्रतीत होता है की इन सभी परंपराओं को भी तार्किक रूप से शैव दर्शन में अंतर्भूत किया जा सकता है। **भाषा विश्लेषणवाद, फ़ेनोमेनोलॉजी, व्यवहारवाद और मार्क्सवाद** ये प्रमुख दार्शनिक परम्परायें हैं, जिनका प्रभाव दर्शन जगत में व्यापक तौर पर महत्व पूर्ण रहा है।

भाषा विश्लेषणवाद

भाषा विश्लेषणवाद के अनुसार दर्शन का कार्य भाषा का तार्किक विश्लेषण कर उसमे निहित **अवधारणात्मक अस्पष्टता, अंतर्विरोध एवं भाषायी उलझनों** को दूर करते हुए **भाषा, तर्क और यथार्थ सत्ता** के संबंधों को स्पष्ट करना एवं भाषा के **अर्थ, व्याख्या, संदर्भ और सत्य संबंधी** सिद्धांतों को विकसित करना साथ ही परंपरागत दार्शनिक समस्याओं एवं दृष्टिकोणों की **परीक्षण एवं समीक्षा** करना है। इस परंपरा में **विट्गिंस्टीन, ऑस्टिन, राईल, स्ट्रासन, जॉन सर्ल, पॉल ग्रीस** जैसे दार्शनिकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भाषा, तर्क और वस्तु जगत के संबंधों की व्याख्या शैव दर्शन में **षडाध्व** की अवधारणा से समझा जा सकता है जिसमे **भुवन, तत्व और कला** की सत्ता को **पद, मंत्र और वर्ण** प्रतिबिंबित करते हैं, जो भाषा विश्लेषण की परंपरा की तुलना में कहीं ज़्यादा व्यापक और तार्किक है। इसी प्रकार **मात्रिका चक्र** की अवधारणा जो छत्तीस तत्वों को प्रतिबिंबित करते है, विचार के साथ विश्लेषण करते हुए विचार को विचार के साथ, विचार को भाषा के साथ और विचार को वस्तु जगत के प्रत्येक स्तर के साथ के अंतरसंबंधों को विश्लेषित करते हुए विचार और भाषा से मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में पश्चिम के भाषा विश्लेषण की झलक मिल जाती है बल्कि शैव दर्शन में इससे भी व्यापक दृष्टि दिखलायी देती है। अतः भाषा विश्लेषणवाद भले ही बीसवीं सदी की उपज हो लेकिन शैव दर्शन में यह अपनी पूर्णता के साथ पहले से ही विद्यमान थी। इसीलिए भाषा विश्लेषणवाद को भी शैव दर्शन में अंतर्भूत किया जा सकता है।

फ़ेनोमेनोलॉजी

फ़ेनोमेनोलॉज़ी के अनुसार मानव चेतना का विश्लेषण कर **शुद्ध चेतना** की प्राप्ति कर भाषा में नवीन अर्थों की खोज करना है। जिससे जीवन और व्यवस्था में आनंद, प्रेम, करुणा, नैतिकता, विवेक और समृद्धि की प्राप्ति हो सके है। **हुसर्रल, मार्टिन हैडेगर, मोर्ली पोंटी, पॉल रिकोवर, ज्याँ पॉल सार्त्र, लेविनॉस** आदि दार्शनिकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया है। इसके तहत चेतना का विविध तरीक़ों से **अपचयन कर शुद्ध चेतना** की प्राप्ति कि जाती है। यह शुद्ध चेतना भाषा और आचरण में अभिव्यक्त होता है। यह शुद्ध चेतना कुछ और नहीं बल्कि आत्म चेतना का ही दूसरा नाम है। यही आत्म चेतना वैश्विक चेतना से जुड़कर जीवन में आनंद, प्रेम, करुणा, नैतिकता, विवेक और समृद्धि का बोध कराती है। यह बात तो भारतीय दार्शनिक परंपरा में पहले से ही उपलब्ध है। शैव दर्शन इसका प्रतिनिधित्व करता है। शैव दर्शन में ध्यान के विविध रूपों से हम चेतना का ही विश्लेषण कर धीरे धीरे क्रमश: शरीर के मलों को, विचारों को, भावनाओं को, सभी प्रकार के

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

नकारात्मक भावों को और अंत में अपने अहंकार को भी अपचयन कर शून्य कर दिया जाता है। जो काम फ़ेनोमेनोज़ी में अपचयन के नाम से किया जाता वही कार्य शैव दर्शन में ध्यान के माध्यम से किया जाता है। ध्यान के माध्यम से अपने स्वरूप की प्राप्ति के पश्चात भाषा के द्वारा जीवन में नए अर्थों कि प्राप्ति होती है।व्यक्तिगत चेतना से सामाजिक चेतना और उसके आगे वैश्विक चेतना की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में जीवन पूर्ण और आनन्दमय होकर सृजनात्मकता की ओर संलग्न हो जाता है। केवल दृष्टिभेद यह है कि जहां फ़ेनोमेनोज़ी में चेतना विशिष्ट होकर समाज में सक्रिय रहता है। वहीं शैव दर्शन में व्यक्ति की मुक्ति कि कामना होती है प्राथमिकता में होती है। लेकिन, परिणाम में दोनों एक ही है। अतः फ़ेनोमेनोज़ी वही कार्य करता है जो शैव दर्शन में किया जाता है। चेतना के अपचयन का कार्य ध्यान में ज़्यादा सार्थक तरीक़े से किया सकता है। अतः फ़ेनोमेनोज़ी को शैव दर्शन के भीतर ही रख कर अध्ययन किया जाना चाहिए।

व्यवहारवाद

इस दर्शन के अनुसार तत्व या सत्ता का आधार मनुष्य के द्वारा किसी वस्तु के साथ किये गये **व्यवहार** या किसी वस्तु की **उपयोगिता** के आधार पर उसकी सत्ता का निर्धारण होता है। उदारहरण के लिये **पानी** के अस्तित्व को तभी माना जाएगा जब तक वह मनुष्य के प्यास को न बुझा दें। यदि पानी का अस्तित्व है किंतु, वह किसी की प्यास बुझाने में सक्षम नहीं है तो उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया जायेगा। दूसरे शब्दों में, वस्तु की क्रिया कोई न कोई फल अवश्य देती है। वस्तु के **क्रिया और फल** के इस संबंध को **अर्थक्रियाकरित्व** की संज्ञा दी गई है, जो **व्यवहारवाद या उपयोगितावाद** के सिद्धांत का मुख्य लक्षण है। इस दर्शन को विकसित करने में **विलियम जेम्स, जॉन डीवी और पियर्स** जैसे अमरीकी दार्शनिकों का योगदान रहा। इस दर्शन का प्रभाव भी समाज के कई क्षेत्रों में व्यापक और प्रभावशाली रहा है। किंतु, इस दर्शन की मूल दृष्टि तो शैव दर्शन में भी मिलता है। शैव दर्शन में क्रमिक मुक्ति की अवधारणा में और प्रत्येक जीव द्वारा पंच क्रिया अनिवार्य रूप से किया जाना इस बात का द्योतक है की अर्थक्रियाकरित्व का सिद्धांत उसमें अंतर्निहित है। फ़र्क़ केवल इतना ही है की जहां एक ओर अमरीकी उपयोगितावाद केवल और केवल उपभोग तक सीमित है, वहीं, दूसरी ओर शैव दर्शन उपभोग और अर्थक्रियाकरित्व से आगे बढ़कर संपूर्ण मुक्ति की कामना करता है। इस प्रकार बड़े मार्ग में छोटे मार्ग एवं गलियाँ स्वतः ही अंतर्भूत हो जाती है। इसमें कोई अंर्तविरोध नहीं है।

मार्क्सवाद

मार्क्सवाद भी बीसवीं सदी का सबसे प्रभावकारी दर्शन रहा है। जिसका प्रभाव लगभग आधी दुनियाँ में रहा है। यद्यपि अब इसके प्रभाव में लगातार कमी आ रही है तथापि एक दर्शन के रूप में इसके ऐतिहासिक महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इस दर्शन की आधारभूत मान्यता यह है की समाज और दुनियाँ विशुद्ध **भौतिक नियमों** से संचालित होती है। किसी भी अतींद्रिय सत्ता यथा ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नर्क, भाग्य, मुक्ति, धर्म आदि किसी की भी कोई भूमिका हमारे जीवन में नहीं है। भौतिक नियम इतिहास की **द्वंदात्मकता अर्थात् वाद, प्रतिवाद और संवाद के त्रिक** संबंधों पर आधारित है जो निरंतर सीधी रेखा में गतिमान है। **आदिम साम्यवाद, दासवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद से होते हुए मानव समाज वैज्ञानिक समाजवाद एवं साम्यवादी समाजवाद** को प्राप्त करना ही हमारा ध्येय है। इसके लिए राजनीतिक अर्थशास्त्र कि क्रांति से वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ कर वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना करना होगा। इस प्रकार इस दर्शन का मूल आधार विज्ञान, द्वंदात्मक भौतिकवाद, समाजवाद, ऐतिहासिक द्वंदात्मकता का त्रिक सिद्धांत और राजनीतिक अर्थशास्त्र है। प्रश्न यह है की शैवदर्शन में मार्क्सवाद का स्थान कहाँ है?

शैवदर्शन में शिव तत्व का बोध ही जीवन का लक्ष्य है, जबकि मार्क्सवाद में वर्गविहीन, राज्य विहीन वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना है, इसमें सभी नागरिक समता और न्याय के साथ सुखपूर्वक रहेंगे। इसमें सामूहिक मुक्ति की अवधारणा काम करती है जबकि शैव दर्शन में व्यक्तिगत मुक्ति केंद्र में है। दरअसल, शैव दर्शन में प्राणिमात्र की मुक्ति की कल्पना कि गई है, लेकिन यह मुक्ति एक एक जीव से क्रमिक रूप से मुक्ति की प्रक्रिया चलती रहती है। दूसरी ओर इसकी मुक्ति वैश्विक चेतना से युक्त होने की मुक्ति है, जो एक प्रकार का यह भी समाज है। मार्क्सवाद में जिस आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति कि कल्पना की गई है, वह शैव दर्शन में तार्किक रूप से क्रमिक मुक्ति की अवधारणा में समाहित है। दूसरा, वाद विवाद और संवाद का जो त्रिक सिद्धांत है, वह शैव दर्शन के त्रिक सिद्धांत में अंतर्भूत है। शैव दर्शन में त्रिक शिव, शक्ति और जीव या पशु, पाश और पति अथवा द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत है। इसका स्वरूप चक्रीय और गतिशील है, किंतु ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में यह सैद्धांतिक रूप से घटित तो होता है लेकिन इसे अध्ययन के रूप दिखाना होगा। इसके अतिरिक्त, ऐतिहासिक और अनैतिहासिक दोनों प्रक्रिया शैव दर्शन में अंतर्निहित है। जिसे द्वंदात्मकता के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। इस प्रकार, मार्क्सवाद की सभी अवधारणाएँ शैव दर्शन में अंतर्निहित है, जिसे विश्लेषण कर बाहर निकालने की आवश्यकता है। शैव दर्शन की व्यापकता मार्क्सवाद से बहुत आगे है। **मार्क्सवाद** केवल उसका छोटा सा अंग है, इनमें कोई अंर्तविरोध नहीं है।

अफ़्रीकन दर्शन एवं जनजातीय दर्शन में सामूहिक चिंतन को आधार माना जाता है। अतः **सामूहिक चेतना** का विकास ही इस चिंतन पद्धति की विशेषता है, जिसे **लोक दर्शन** के नाम से भी जाना जाता है। शैव दर्शन में ज्ञान की क्रिया एवं प्रकाश को आधार बनाकर सामूहिक चिंतन की विधि को भी समझा जा सकता है।इसी प्रकार **उत्तर आधुनिकता, उत्तर मार्क्सवाद** आदि दार्शनिक प्रवृत्तियों के तहत **भाषा विखंडन, विचार विखंडन, सत्ता विखंडन, संस्कृति, समाज, राजनीतिक अर्थशास्त्र** जैसे अवधारणाओं को शैव दर्शन के आलोक में समझा जा सकता है।

ओशो और कृष्णमूर्ति जैसे स्वतंत्र चिंतकों को भी शैव दर्शन के **क्रम मुक्ति, आनोपाय, बौद्ध मुक्ति और पौरुष मुक्ति, स्वातंत्र शक्ति, प्रकाश-विमर्श** जैसी अवधारणाओं के

आलोक में समझा जा सकता है क्योकि वहाँ भी स्वतंत्र शक्ति की सत्ता को माना गया है। जिससे स्वतंत्र विश्व या समाज की रचना की जा सकती है।

ज्ञान मीमांसा

ज्ञान मीमांसा की दृष्टि से भी शैव दर्शन सर्व समावेशी दर्शन है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति **पूर्णतः अज्ञानी** नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य होता है। अज्ञानता से आशय **अल्प ज्ञान या अपूर्ण ज्ञान** से है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सार रूप में पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति है जो वैश्विक चेतना अर्थात् **शिव तत्व के बोध** से ही संभव है। इसलिए शैव दर्शन में ज्ञान का विषय **चेतना** है। चेतना वस्तु जगत और आत्म जगत दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। इस दृष्टि से **भारतीय और पाश्चात्य सभी दार्शनिक परंपराओं** में ज्ञान के जो भी विषय है- **भौतिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक** आदि मनुष्य के लिए जो भी ज्ञेय है वे सभी शैव दर्शन में प्रमेय हैं। दूसरा प्रश्न, प्रमाण की संख्या से है। शैव दर्शन **प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिहिय, आगम** आदि सभी प्रकार के प्रमाणों को मान्यता देता है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं जिससे ज्ञान की प्राप्ति न हो। इसलिए समस्त प्रमाण जो इस जगत में उपलब्ध है वे सभी स्वीकार्य है। इस दृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य सभी दार्शनिक परंपराओं में मान्य प्रमाणों का समावेश शैव दर्शन में हो जाता है। जहां तक ज्ञान के स्वरूप का प्रश्न है। सभी भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक परंपरायें ज्ञान को या तो प्रकाश स्वरूप मानते है या क्रियात्मक मानते है अथवा दोनों का संयुक्त रूप मानते है। तीसरी कोई संभावना नहीं। चूँकि, शैव दर्शन ज्ञान को **प्रकाश एवं विमर्श या क्रिया** संयुक्त रूप मानते हैं इसलिए सभी दर्शनों की ज्ञान दृष्टि शैव दर्शन में समाहित हो जाती है।

मूल्य मीमांसा

मूल्य मीमांसा की दृष्टि से भी शैव दर्शन सभी प्रकार के **नैतिक मूल्य, सत्य मूल्य और सौंदर्य मूल्य** की शरणास्थली है। चूँकि, इस दर्शन में जीवन के प्रत्येक रूपों को सहजता के साथ स्वीकार किया गया है। इसलिए जीवन जीने के लिए एवं इसे निरंतर **उदात्त एवं नैतिक** बनाने के लिये जीतने भी मूल्यों की आवश्यकता होती है, वह सब प्रयोग में लाये जाते है। **प्रेम, करुणा, सौहार्द, अहिंसा, संवेदना, ईमानदारी, उपयोगिता, सुख, न्याय, सत्य, समता, स्वतंत्रता, विकास, धन, शक्ति, सफलता, सम्मान, पर्यावरण संतुलन** आदि नैतिक मूल्य जो सभी दार्शनिक परंपराओं एवं समाज में मान्य है शैव दर्शन क्रमिक मुक्ति की अवधारणा के आधार पर संरक्षण प्रदान करता है। सत्य के मूल्य की जितनी व्यापकता, विविधता और गहनता के साथ शैव दर्शन में स्वीकार गया है उसे तत्त्वमीमांसा के प्रकरण में देखा जा चुका है, वह अन्यत्र परिलक्षित नहीं होता है। इसी प्रकार, सौंदर्य मूल्य के संदर्भ में साहित्य और कला के क्षेत्र में **रस सिद्धांत** को देकर शैव दर्शन ने विश्व के लिये अदभुत कार्य किया है। साहित्य और कला के क्षेत्र में ऐसा कोई सिद्धांत और मानदंड नहीं है जिसे **रस सिद्धांत** के अन्तर्गत न समझा जा सके। शैव परम्परा में ही भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, आनंदवर्धन का ध्वन्नालोक, पंचतंत्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी आदि रचनायें इस पर व्यापक प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार मानवीय मूल्यों का ऐसा कोई कोना नहीं जिसे शैव शास्त्र ने संबोधित न किया हो।

इसके अतिरिक्त शैव दर्शन की मदद से क्या राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के सवालों और समस्याओं पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है? इसका उत्तर भावात्मक ही है। यह सच है शैव दर्शन के इतिहास में और लिखे गये शास्त्रों और पुस्तकों में **तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, योग साधना, साहित्य और मूल्यों** के अलावा अलग से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था संबंधी प्रश्नों पर विचार नहीं दिखलायी पड़ता। **महर्षि अरविंद, गोपीनाथ कविराज, के. सी. पांडे** जैसे कुछ चिंतकों की कृतियों में कुछ चर्चा तो मिलती है, लेकिन पर्याप्त प्रकाश नहीं डालती है और न ही आधुनिक समस्याओं को संबोधित करती है। इसलिए इस पर पृथक से कार्य करने की आवश्यकता है। फिर भी गहराई से देखने पर इन पर थोड़ा प्रकाश डाला जा सकता है। सर्वप्रथम, शैव दर्शन किसी भी **जातिवाद, रंग भेद, पुरुष स्त्री** भेद आदि से मुक्त है। शिव तत्व के साक्षात्कार के लिए कोई भी व्यक्ति पात्र है।केवल इतनी ही अपेक्षा की गई है की साधक में सत्य या शिवत्व को जानने की उत्कंठा हो। यदि उसमे जानने की इच्छा नहीं भी, वह इसके प्रति जागरूक नहीं है तब भी शिव के अनुग्रह से वह वंचित नहीं है। हाँ, यदि वह जागरूक है तो उसे तीव्र अनुग्रह की प्राप्ति होगी और यदि नहीं तो मंद अनुग्रह मिलेगा। वस्तुतः शिव का अनुग्रह संपूर्ण मनुष्य जाति के लिए सभी को समान रूप से निरंतर बरसता रहता है। लोग अपनी क्षमता अनुसार उसे ग्रहण करते रहते है। प्रेम और करुणा मानवीय संबंधों का आधार है। चूँकि, **चित, ज्ञान, क्रिया, स्वतंत्रता और आनंद जीव और शिव** का मुख्य स्वरूप है इसलिये लोकतंत्र के सभी मूल्य **स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुत्व** आदि राजनीतिक व्यवस्था में सहज स्वीकार्य है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक विकास के माध्यम से उपभोग को प्रोत्साहित करते हुए **ट्रस्टीशिप** के सिद्धांत के आधार पर शैवदर्शन के साथ साम्यता बनती है ।

शैव दर्शन केवल दर्शन के ही क्षेत्र में ही नहीं बल्कि **समाज, राष्ट्र और सभ्यता** निर्माण में भी इसकी महती भूमिका हो सकती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त व्यापक विमर्श के आधार पर यह कहा जा सकता है की शैव दर्शन एक **सर्वसमावेशी, विश्लेषणवादी और बोधपरक दर्शन** है जिसके आलोक में न केवल भारत के सभी दार्शनिक परंपराओं अपितु पश्चिम के सभी दार्शनिक प्रणालियों की व्याख्या की जा सकती है और अपनी व्यापकता और सर्वसमावेशी गुण की वजह से सभी दर्शनों को अपने भीतर समाहित भी कर लेती है। इतना ही नहीं चूँकि, शैव दर्शन मनुष्य के **विचार और आध्यात्मिकता की सर्वोच्य** अभिव्यक्ति है, इसलिए इससे **भविष्य के दर्शनों** को भी विकसित करने में मदद ली जा सकती है। दर्शन तो समस्त ज्ञान की जननी है लेकिन अपनी विशिष्टता की वजह से **शैव दर्शन** को **समस्त दर्शनों की जननी** भी कही जा सकती है। इसी आधार पर **शैव**

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी

दर्शन को समस्त दर्शनों का **शिरोमणि** कहा जा सकता है। बस, ज़रूरत केवल इतनी ही है की इस दर्शन को पूरी व्यापकता और गंभीरता के साथ **अध्ययन और अनुसंधान** की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. द्विवेदी, श्यामाकांत. (2015). *शिवसूत्र: वसुदेव.* वाराणसी: चौखंभा सुरभारती प्रकाशन.
2. द्विवेदी, श्यामाकांत. (2014). *स्पंदकारिका: भट्ट कल्लट.* वाराणसी: चौखंभा सुरभारती प्रकाशन.
3. चतुर्वेदी, राधेश्याम. (सम्पादक). (2013). *शिवदृष्टि: सोमानन्द.* वाराणसी: वाराणसेय संस्कृत संस्थान.
4. पंडित, बी. एन. (2004). *ईश्वर प्रतिभिज्ञा कारिका ऑफ उत्पलदेव: वर्सेज़ ऑन द रिकॉग्निशन ऑफ द लॉर्ड.* नई दिल्ली: मोती लाल बनारसी दास.
5. चट्टोपाध्याय, जगदीशचंद्र. (सम्पादक). (1911). *प्रतिभिज्ञा हृदयम: क्षेमराज.* कश्मीर संस्कृत सिरीज़.
6. चतुर्वेदी, राधेश्याम. (सम्पादक). (2012). *तंत्रालोक: भाग एक: अभिनव गुप्त.* वाराणसी: चौखंभा विद्या भवन.
7. लक्ष्मणजू. (2003). *कश्मीर शैविज्म: द सीक्रेट सुप्रीम.* श्रीनगर, कश्मीर: ईश्वर आश्रम ट्रस्ट प्रकाशन.
8. पांडेय, के. सी. (1963). *अभिनव गुप्त: हिस्टारिकल एंड फिलोसॉफिकल स्टडी.* वाराणसी: चौखंभा संस्कृत सिरीज.
9. पांडेय, के. सी. (1998). *ऐन आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री ऑफ शैव फिलोसफी.* नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
10. मिश्र, कमलाकर. (1998). *कश्मीर शैविज्म: द सेंट्रल फिलोसॉफी ऑफ तंत्रिज्म.* नई दिल्ली: श्री सतगुरु प्रकाशन.
11. राधाकृष्णन, डॉ. (2008). *इण्डियन फिलोसफी भाग I एवं II.* नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
12. डर्फी, ऐच. (सम्पादक). (1976). *ऐनालिटिकल फिलोसफी एंड फ़ेनोमेनोलॉजी.* मार्टिनस निजॉफ.

***Corresponding Author:** डॉ. राकेश सोनी